अध्याय–2

मुद्रा निर्माण में प्रयुक्त तकनीकि में देशी एवं विदेशी तत्व

छठी शताब्दी ईसा पूर्व लौह तकनीकि के विकास के फलस्वरूप आये सकारात्मक आर्थिक परिवर्तनों ने प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था को विभिन्न आयामों से प्रभावित किया, निर्वाह अर्थव्यवस्था का मौद्रिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन इसी का प्रतिफल था। इस मौद्रिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत जिन सिक्कों का निर्माण किया गया उन्हें निर्माण तकनीकि के आधार पर आहत सिक्कों का नाम दिया गया। मुद्रा प्रचलन की देशी विधि में, जो आहत सिक्कों में देखने को मिलती है, शासकों का नाम या उनकी आकृति अंकित नहीं होती, इसलिए आहत सिक्कों के स्वरूप को लेकर प्रारम्भिक विद्वानों में मतभेद था। कनिंघम[1], व्हाइटहेड[2] व मैकडोनाल्ड[3] के अनुसार यह मौद्रिक कला के शशैव कालीन सिक्के समस्त सिक्कों में साधारणतम थे। किन्तु एलन[4] का विचार था कि वे प्रारम्भिक सिक्कों से कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर थे। विंसेन्ट स्मिथ[5] की राय थी कि हिमालय से कन्याकुमारी तक उनकी शैली एवं भारक्रम में गजब की एकरूपता थी। कनिंघम, व्हाइटहेड तथा मैकडोनाल्ड जैसे विद्वानों का नजरिया सिक्के के पूर्ण विकसित पाश्चात्य परम्परा के सन्दर्भ में बताया गया दृष्टिकोण था। भारत में जब से विदेशी परम्पराओं के सिक्के हिन्द–यवन, शक, पह्लव, कुषाण और रोमन सिक्कों के रुप में प्राप्त होने लगते हैं, तब से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विदेशी परम्परा के अन्तर्गत सिक्का चलवाना राजा का ही

विशेषाधिकार था, उस पर उसका नाम, उसकी उपाधि और अधिकांशतः उसका चित्र भी अंकित होना अनिवार्य था।

इन प्राचीन सिक्कों की निर्माण प्रक्रिया में अपनायी गयी योजनाओं में एकरुपता का अभाव था; यही कारण है कि इनके आकार, प्रकार, धातु अंश के मिश्रण आदि में भिन्नता है। इससे एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि इन सिक्कों का निर्माण किसी एक शासन सत्ता द्वारा नहीं कराया गया था अन्यथा इनके आकार–प्रकार एवं धातु अंश के मिश्रण में समानता अवश्य होती। ऋग्वेद काल से ही इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि विभिन्न धातुओं को गलाकर अथवा ठोंक–पीटकर उन्हें नये–नये आकार प्रदान किये जा रहे थे। ऋग्वेद, मैत्रेयीसंहिता, तैत्तिरीय संहिता आदि में मर्माण शब्द का प्रयोग धातु कर्मी के लिए, ऋग्वेद में ध्यमत्रि शब्द का प्रयोग धातु को गलाने वाले व्यक्ति के लिए किया गया है। इसी वेद में "आयोहत" शब्द का प्रयोग हथौड़े के लिए किया गया है। इसी क्रम में यदि आहत सिक्कों की निर्माण प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाय तो उसमें प्रयुक्त किया जाने वाला प्रमुख उपकरण आयोहत अथवा हथौड़ा ही था जिससे धातुओं को ठोंक पीट कर उन्हें एक गोल आकार की मुद्रा का रुप दिया जाता था। उल्लेखनीय है कि वैदिक युगीन शतमान नामक स्वर्णखण्ड आहत सिक्कों के ही तरह गोल था, जिसका भार 100 कृष्णल अथवा 175 ग्रेन माना गया है। इसके अतिरिक्त निष्क, सुवर्ण, शतमान का उल्लेख आभूषण के रुप में नहीं बल्कि पुरोहितों या विद्वानों को पारिश्रमिक या उपहाहर के रुप में दिये जाने का उल्लेख है। पुरोहितों या विद्वानों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक या उपहार का आभूषण के रुप में न होना, तथा इसी क्रम में पणियों के

खजानों का उल्लेख यह दोनों बातें आभूषण से अलग किसी मुद्रा आकार की ओर संकेत करती हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि पणियों की निधि अद्रिबुध्न या पर्वतीय शिलाओं के नीचे छिपी हुई है, जिसकी रखवाली में पणिगण तत्पर हैं, और इसे बैलों, घोड़ों, और गधों पर लाद कर ले जाने योग्य बताया गया है[6]। ऋग्वेद में ही एक स्थान पर पणियों की निधि को परम गुहा में निहित होने की बात कही गयी है[7]। एक स्थान पर "सुनरंवसु" या आसानी से ढोये जा सकने वाले धन की बात की गयी है[8]। इन साहित्यिक प्रसगों के आधार पर आहत मुद्रा निर्माण तकनीक को वैदिक कालीन मानना तार्किक प्रतीत होता है। अनेक विद्वानों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। आहत सिक्के स्वर्ण या रजत जैसी कीमती धातुओं से काटकर निकाले जाते थे। उल्लेखनीय है कि वैदिक काल में स्वर्ण शलाकाओं का प्रचलन था, जिनसे समयानुसार छोटे–छोटे टुकड़े माप और भार के अनुसार निकाले जाते थे। यह कहना भी तर्कसंगत प्रतीत होता है कि इन्हीं स्वर्ण शलाकाओं से ही निकाले गये टुकड़े आहत सिक्के के रुप में विकसित हुए होगें। आहत सिक्कों में किसी तरह का लेख उपलब्ध नहीं है, लेकिन इन सिक्कों में कुछ प्रतीक चिह्न अंकित हैं। इन सिक्कों की निर्माण विधि में भिन्नता के कारण सिक्कों के आकार–प्रकार में भी भिन्नतायें थीं लेकिन वर्गाकार, कोणाकार, मिश्रित आकार के सिक्कों की बहुलता थी।

मुद्रा निर्माण विधिः–

प्राचीन भारतीय इतिहास में मुद्रा निर्माण की तीन विधियाँ प्रचलित थीं– आहत प्रणाली, ढलुआ प्रणाली और ठप्पा प्रणाली ।

मुद्रा निर्माण की आहत प्रणाली:–

यह प्रणाली अति प्राचीन है, इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम जिस धातु से मुद्रा निर्माण करना होता था उस धातु को भट्ठी में गरम करके एक चद्दर या पत्तर तैयार की जाती थी इसके उपरान्त मानक वजन के बराबर चौकोर टुकड़े काट लिए जाते थे। धातु के कटे हुए चौकोर टुकड़े को उचित वजन के रुप में बनाने के लिए उनके कोनों को काटा जाता था। वजन को समान बनाने हेतु उन कोनों को काट दिये जाने के कारण वजन तो बराबर हो जाता था लेकिन आकार में विभिन्नता आ जाती थी। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि वजन को समान बनाने अर्थात वजन प्रणाली अपनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? मनु स्मृति के टीकाकार[9] मेधातिथि इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि चूँकि देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न वजन प्रणाली विद्यमान थी इसलिए उनमें एक आनुपातिक सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक था ताकि उन क्षेत्रों के व्यापारियों को एक दूसरे से क्रय–विक्रय सम्बन्धी कोई कठिनाई न हो। यही कारण था सिक्कों के आकार से अधिक भार सामंजस्य पर अधिक बल दिया गया। प्राचीन कालीन कार्षापण नामक मुद्रा का निर्माण आहत प्रणाली से किया गया था, इसीलिए कार्षापण कई आकार में मिलते है। मुद्रा निमार्ण प्रक्रिया में इसके उपरान्त कतिपय चिह्न कब और किसके द्वारा प्रवर्तित किये गये ? इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों के एक वर्ग का मानना है कि अब कार्षापण या पुराण जैसी आहत मुद्राओं की धातु की शुद्धता परीक्षण विभिन्न संस्थाओं द्वारा किया जाता था तो उन पर यह संस्थायें अपने–अपने प्रतीक चिह्न अंकित कर देती थीं। लेकिन विद्वानों के दूसरे वर्ग का यह मानना है कि सिक्कों पर सभी चिह्न एक साथ आहत

किये जाते थे। यह चिह्न छेनी ;च्नदबीद्ध से अंकित किये जाते थे। लेकिन चिह्नों की अधिकता, स्थान की कमी या सुसंगठित ढंग से कार्य न करने के कारण चिह्न स्पष्ट रूप से अंकित नहीं हो पाते थे बल्कि वे एक दूसरे को ढक लेते थे। आहत मुद्राओं में प्रतीक चिह्नों को अंकित करने में छेनी का प्रयोग किया जाता था, इसीलिए आहत प्रणाली द्वारा तैयार किये गये सिक्कों को 'पंचमार्क' के नाम से भी जाना जाता है। आहत प्रणाली बहुत ही सरल एवं साधारण प्रणाली थी।

मुद्रा निर्माण की ढलुआ प्रणालीः–

प्राचीन भारत की मुद्रा निर्माण तकनीकि में आहत प्रणाली के उपरान्त ढलुआ प्रणाली का आविष्कार हुआ। इस प्रणाली के अन्तर्गत मुद्रा निर्माण का कार्य साँचे द्वारा सम्पादित किया जाता था। मिट्टी या धातु के साँचे तैयार किये जाते थे उसके उपरान्त धातु गला कर इन साँचो में डाल दी जाती थी। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से साँचे में ढाल कर सिक्के बनाये जाने लगे थे। संस्कृत साहित्य "नैषधीयचरित" में सँचक शब्द का प्रयोग हुआ है। "संमरांगण सूत्र" में भी विभिन्न प्रकार के साँचों का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है। डा० वीरबल साहनी ने अपनी पुस्तक "टैक्नीक ऑफ कास्टिंग क्वायन्स इन इन्डिया" में बहुत अच्छे ढंग से सिक्कों को ढालने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। रोहतक, तक्षशिला, नालन्दा, काशी, साँची, मथुरा, सुनेत, अतरंजीखेड़ा, कडकल, कोण्डपुर इत्यादि पुरास्थलों से उत्खनन में साँचे प्राप्त हुए हैं। इनमें से सबसे प्राचीन साँचा रोहतक से प्राप्त हुआ है जिसका समय प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व है। लेकिन तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व का काँसे का ठप्पा ;क्पमद्ध मध्य प्रदेश के

एरण नामक स्थान से मिला है लेकिन ठप्पा मुद्रा निर्माण पद्धति ढलुआ पद्धति के बाद ही आरम्भ हुई होगी।

मुद्रा निर्माण की ढलुआ पद्धति में सर्वप्रथम मिट्टी या धातु के साँचे तैयार किये जाते थे। अद्यतन केवल एरण से धातु निर्मित साँचा प्राप्त हुआ है। जबकि मिट्टी के बने साँचे बनाने से पहले मिट्टी में प्रायः धान की भूसी मिलायी जाती थी, भूसी मिली मिट्टी को गोलाकार धातु के चद्दर पर फैलाया जाता था। चद्दर के बीच में कील लगी रहती थी ताकि मिट्टी के फैलने पर भी बीच में छिद्र बना रहे। उस मिट्टी के तह तक नक्षत्र के आकार के लोहे के यन्त्र से दबाव दिया जाता था जिससे उस गोल मिट्टी के तह तक नई नालियाँ बन जाती थी। प्रत्येक नाली के अन्त में गोल सिक्के के चिह्न तथा लेखरहित साँचा बना रहता था। इस गोल सतह को मण्डलक ;क्पौद्ध कहते थे। वस्तुतः यही साँचे का भाग होता था जिसके मध्य में छिद्र था। पिघली हुई धातु इस केन्द्र से पतली नालियों से होकर सिक्कों के साँचे के असली स्थान पर पहुँचती थी। मिट्टी में जो लेख और चिह्न बने रहते थे वे सिक्के पर अंकित हो जाते थे। निचले मण्डलक पर जो कुछ अंकित होता था वह अग्रभाग या पृष्ठ भाग का चित्र होता था। दूसरा मण्डलक भी मिट्टी से तैयार किया जाता था जिसके दोनों ओर एक सी बनावट होती थी। एक मण्डलक के ऊपर दूसरा मण्डलक इस प्रकार रखा जाता था कि केन्द्र से केन्द्र, नालियाँ से नालियाँ तथा सिक्के के स्थान से सिक्के का स्थान ठीक–ठीक बैठ जाय और पूरे साँचे का मुँह से मुँह मिला हो। इस बनावट से पिघली हुई धातु के बाहर निकलने की सम्भावना नहीं रहती थी। इस प्रकार पूरे साँचे में एक साथ बहुत से सिक्के तैयार किये जाते थे। मिट्टी के

मण्डलक के आधी गहराई तक चिह्न एवं लेख खुदे होते थें। सिक्के का ठीक उल्टा उसके साँचे में होता था फिर मिट्टी का बना साँचा भट्ठी में रख दिया जाता था। मण्डलक के केन्द्र में जो छिद्र होता था उसमें पिघली हुई धातु डाल दी जाती थी और वह स्तर में फैल जाती थी। एक सतह में जितनी नालियाँ रहती थीं उनसे होकर वह धातु सिक्के के असली खाचे में पहुँच आती थी। उस स्थान पर जो चिह्न व लेख मिट्टी के गहराई में खुदा रहता था वही उस धातु के टुकड़े पर उभर आता था। ठण्डा होने पर मिट्टी के पूरे आकार को तोड़ दिया जाता था और जो चित्रित गोलाकार धातु पिण्ड निकलता था, उसे सिक्का कहते थे। इस प्रणाली से एक साथ कई सिक्के बना लिये जाते थे। ठक्कुरफेरू कृत "द्रव्यपरीक्षा" में साँचे में ढाल कर सिक्के तैयार करने की प्रणाली की पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। अभी तक अनेक पुरास्थलों के उत्खनन से मिट्टी की मुहरें मिली हैं। जिनका पूर्ण रूप से परीक्षण करने के पश्चात यह निश्चय किया गया है कि वे सिक्का ढालने के साँचे थे। राजघाट (काशी) के उत्खनन में ऐसे साँचों का टुकड़ा मिला है। ऐसे दो भागों को मिलाकर धातु पिण्ड का अग्रभाग तथा पृष्ठभाग का चित्र अंकित किया जाता था। कालान्तर में इस विधि से भी धातु को पिघलाकर साँचे में सिक्के के वास्तविक स्थान पर पहुँचाया जाता था, जिससे साँचा ठण्डा होने पर बिना तोड़े सिक्के को निकाला जा सके। साँची, काशी तथा नालन्दा में ऐसी ही साँचों का प्रयोग होता था। लेकिन विद्वानों का मत हैं कि एक साथ कई सिक्कों को ढालने की यह जटिल प्रणाली धीरे–धीरे छोड़ दी गयी क्योंकि यह विधि राजकीय टकसालों के हित में नहीं थी। इस प्रणाली से जालसाजी को बहुत प्रोत्साहन मिला। ऐसे बहुत से साँचे मिले हैं

जिनका प्रयोग राजकीय टकसालों में भी पाया गया और साथ ही साथ वैसे ही साँचे जालसाजों के शिल्पशालाओं में भी देखने को मिले हैं। अतः एक समय में इस सिक्के ढालने की प्रणाली अपनाने के पश्चात साँचे में धातु इस प्रकार डाली जाती थी कि सिक्का तैयार होने पर साँचे को ज्यों का त्यों बचा लिया जाय ताकि पुनः उसी साँचे का प्रयोग किया जा सके। अतः मिट्टी को नष्ट होने से बचाने के लिए एक ही सिक्का ढालना उचित समझा गया। आज तक जितने भी साँचे मिल हैं वे सभी मिट्टी को पकाकर तैयार किया गया हैं लेकिन अपवाद स्वरूप एरण से मिले कांस्य धातु के एक साँचे का उल्लेख आवश्यक है। परन्तु अभी तक इस कांस्य साँचे के अतिरिक्त धातु का अन्य कोई साँचा प्राप्त नहीं हो सका हैं। फिर भी कुछ विद्वानों का मत हैं कि साँचे लोहे और पत्थर के भी बनते थे। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में कौशाम्बी, अयोध्या तथा मथुरा में साँचे में ढले हुये सिक्के तैयार किये जाते थे। जब से सिक्के ढाले जाने लगे तब से उनका आकार चौकोर से गोल कर दिया गया। फलतः सिक्के देखने में सुन्दर प्रतीत होने लगे।

मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणालीः–

ठप्पा प्रणाली मुद्रा निर्माण की तृतीय विधि है जो प्राचीनकाल से लेकर आज तक काम में लायी जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत जो चिह्न तथा लेख सिक्के पर उताराना होता था वही चिह्न और लेख ठप्पे ;क्पमद्ध में बने रहते थे। इस विधि में गरम धातु के टुकड़े पर ठप्पे के दबाव से चिह्न अंकित किये जाते थे। इस प्रकार आहत निर्माण प्रणाली एवं ठप्पे मार कर सिक्के बनाने की तकनीक में अन्तर इतना ही है कि जहाँ पहले लाँछन अलग–अलग बिम्ब टंकों से छापे जाते थे वहाँ उन सबको एक ही साँचे

या ठप्पे में समेट लिया गया। साथ ही इस पद्धति द्वारा निर्मित सिक्कों पर लेख अंकित करने का नया तत्व जुड़ गया। इस विधि से समय तथा श्रम की बचत हुई। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली ढलुआ मुद्रा प्रणाली से उत्तम थी क्योंकि इस प्रक्रिया में साँचों का स्थान ठप्पों ने ले लिया तथा साँचा बनाने में जो कठिनाइयाँ होती थीं वह भी दूर हो गयीं। ईसा पूर्व चार सौ वर्ष पुराने सिक्के मिले हैं जो ठप्पे मार कर तैयार किये गये हैं। बोधिवृक्ष, स्वास्तिक तथा सिंह आकृति तक्षशिला के सिक्कों पर मिलती है जो ठप्पे मारकर तैयार किये गये हैं।

प्राचीन साहित्य में भी ठप्पे के प्रयोग के विवरण मिलते हैं। पाणिनी[10] ने भी रूप शब्द का प्रयोग किया है जो ठप्पे द्वारा तैयार सिक्कों के अर्थ में हुआ है। आकृतियुक्त ठप्पे के लिए "रूप" शब्द का प्रयोग हुआ है। यह पारिभाषिक शब्द बहुत समय तक प्रचलन में बना रहा। बाण ने भी हर्षचरित[11] में "रुप" का प्रयोग ठप्पे के अर्थ में किया है। मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणाली की दो विधियाँ थी, प्रथम एकहरी ठप्प प्रणाली द्वितीय दोहरी ठप्पा प्रणाली।

एकहरी ठप्पा प्रणालीः–

इस प्रणाली द्वारा तैयार किये गये सिक्के के केवल एक ही ओर ठप्पे के प्रयोग से मुद्रा लेख एवं चिह्न अंकित किये जाते थे जबकि दूसरा भाग सपाट होता था।

दोहरी ठप्पा प्रणालीः–

मुद्रा के दोनों ओर लाँछन अंकन के लिए सामान्य रुप से मुद्रा के अग्रभाग एवं पृष्ठभाग का प्रयोग एक साथ किया जाता था। इस शैली के सिक्कों को बनाने के लिये पहले नीचे वाले ठप्पे पर सिक्के के पृष्ठभाग के चिह्न आदि का टंकण किया गया, फिर उस पर गरम धातु रखकर अग्रभाग के चिह्नों को द्योतित करने वाले ठप्पे से दबाव डाला जाता था। गान्धार में सबसे पहले दोहरे ठप्पे से सिक्के तैयार किये गये। भारतीय गण राज्यों यथा कुणिन्द औदुम्बर, यौधेय, आर्जुनायन आदि में दोहरे ठप्पे वाली प्रणाली को अपनाया गया। जनपद राज्यों यथा, अयोध्या, कौशाम्बी, मथुरा, पांचाल आदि में भी साँचे के बाद दोहरे ठप्पों का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार धातु को पीटकर मुद्रा निर्माण की प्रणाली को छोड़कर उसे गलाकर साँचे में ढालने की प्रणाली उपयोग में लायी गयी। पहले उन पर एक ओर लेख तथा चिह्न अंकित किये जाते जिसमें एक ठप्पे ैं;पदहसम कपमद्ध की सुन्दर प्रणाली अपनायी।

भारत में मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणाली ;क्पम ैलेजमउ ब्वपदंहमद्ध विशुद्ध विदेशी है क्योंकि ठप्पों द्वारा मुद्रा निर्माण की परम्परा की शुरुआत यूनानी शासकों ने किया। यूनानियों द्वारा लायी गयी ठप्पा प्रणाली से निर्मित भारतीय मुद्रायें पहले से और अधिक सुडौल तथा कलात्मक बनने लगीं। मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणाली, सिक्कों पर लेखों का अंकन तथा सिक्कों पर तिथि का अंकन विशुद्ध विदेशी तत्व माने जा सकते हैं। सिक्के जारी करना शासक का विशेषाधिकार होना, उस पर उसका नाम अंकित होना, उसकी उपाधि एवं उसका चित्रांकन आदि विदेशी परमपरा के मुख्य तत्व थे।

प्राचीन भारत में टकसाल तथा मौद्रिक विनिमयः–

प्राचीन भारत में टकसाल और मुद्रा के बढ़ रहे चलन के परिपेक्ष में भारत वर्ष के प्रारम्भिक धन सम्बन्धी उतार चढ़ाव को समझा जा सकता है[12]। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस विषय की प्रथम सूचना उपलब्ध होती है। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में जब चन्द्रगुप्त मौर्य ने प्रथम भारतीय साम्राज्य की स्थापना की तो मुद्रा निर्माण प्रक्रिया को अत्यधिक महत्व देते हुए राजकीय टकसालों का निर्माण किया गया और 'लक्ष्णाध्यक्ष' तथा 'रुपदर्शक' जैसे अधिकारियों की नियुक्ति की गयी। यहाँ पर कौटिल्य की अर्थशास्त्र की कुछ पंक्तियाँ जो शामाशास्त्री महोदय द्वारा अनुवादित हैं, प्रस्तुत की जा रही है, जिनसे यह विदित होता है कि टकसाल तथा मौद्रिक विनिमय की एक विशिष्ट भारतीय परम्परा रही है :

"लक्ष्णाध्यक्ष, रुपरुप अर्थात चाँदी के सिक्कों के निर्माण में चार भाग ताँबा तथा 1/16 भाग तीक्ष्ण, त्रपु, सीस, अंजन आदि धातुओं में से किसी एक का समिश्रण करके बनायेगा। एक पण, आधा पण, चौथाई पण तथा 1/8 पण की इकाई में सिक्कों का निर्माण किया जायेगा। ताम्ररुप अथवा ताँबे के सिक्कों में चारों भाग मिश्रित धातुओं का होगा और उनमें माषक, अर्द्ध माषक काकिणी एवं अर्द्धकाकिणी इकाईयों का निर्माण किया जायेगा। रुपदर्शक विनिमय के माध्यम तथा लीगल टेन्डर के रुप में कोष प्रवेश्य मुद्रा का नियमन करेगा। सिक्कों पर लिया जाने वाला अदेय 8ः होगा और इसे रुपिक कहा जायेगा। 5ः अदेय को ब्याजी कहा जायेगा और 1/8ः को परीक्षिक अथवा परीक्षण फीस कहा जायेगा और इस सम्बन्ध में अपराधियों पर 25 पण का जुर्माना किया जायेगा। यह जुर्माना सरकारी निर्माताओं, विक्रेताओं, क्रेताओं एवं परीक्षकों पर नहीं लगाया जायेगा।"[13]

इस ग्रन्थ में आगे कहा गया है कि :

"राजकीय सोनार नागरिकों तथा ग्रामवासियों द्वारा (सिक्के ढलवाने के लिए) लायी गयी धातुओं के सिक्के बनाने के लिए शिल्पियों की नियुक्ति करेगा। नियुक्त शिल्पी लोग उसके कार्यालय में ही निश्चित समय के अन्दर कार्य पूरा करेंगे। टकसाल का सोनार नागरिको एवं ग्रामवासियों को उनके द्वारा लायी गयी धातुओं के भार और गुणवत्ता के बराबर सिक्के वापस करेगा। अधिक समय के अन्तराल के बाद भी वे सिक्के जो चलन में आने पर या अन्य कारणों से घिस चुके थे या चलन में आने योग्य नहीं रहे उन्हें टकसाल में पुनः वापस ले लिया जायेगा। राजकीय सोनार टकसाल में कार्यरत शिल्पियों से सोने की गुणवत्ता शुद्धता तथा विनिमय दर आदि की सूचना लेते रहते थे। सोने या चाँदी को एक सिक्के का निर्माण करने के लिए एक काकिणी सोना अथवा चाँदी अधिक लिया जायेगा क्योंकि निर्माण प्रक्रिया में उतनी धातु का क्षय हो जाता है। जब सिक्कों की गुणवत्ता माशा के समुचित मापदण्ड से गिर जाती थी अर्थात निम्न स्तर की हो जाती थी तब शिल्पकारों को दण्डित किया जाता था। मुद्रित सिक्कों में छलपूर्ण विनिमय करने पर पकड़े जाने वाले व्यक्तियों को जुर्माना के रुप में दण्ड दिया जाता था। यदि राज्य सरकार की अनुमति के बिना टकसाल या सिक्का ढालने के निर्धारित स्थान के अन्यत्र सिक्कों का निर्माण किया गया तो सोनार को 12 पण तक का दण्ड दिया जाता था और तत्सम्बन्धित शिल्पकार को उसका दो गुना अधिक दण्ड दिया जाता था। यदि उसका पता न चल सका तो उसकी खोज की जाती थी तब उस पर 200 पण का जुर्माना होता था अथवा उसकी पाँच ऊँगुलियाँ काट ली जाती थीं। सिक्कों के वजन का

संतुलन या विपरीत वजन की स्थिति पर टकसाल निरीक्षक पर 12 पण का जुर्माना लगता था"[14]।

अर्थशास्त्र की उपरोक्त पंक्तियों से यह प्रकट होता है कि राज्य में सिक्कों का चलन किसी कानूनी निविदा पर ही निर्धारित नहीं था, बल्कि वह विनिमय का माध्यम मात्र था। धातु की वरीयता के आधार पर अलग–अलग क्षेत्रों से सोने या चाँदी की सिल्लियों की शुद्धता तथा निर्धारण कार्य पूर्णतया कानूनी निविदा के द्वारा ही सुनिश्चित किया जाता था[15]। प्रत्यक्षतः वे सिक्के जो अन्य लोगों द्वारा लायी गयी सिल्लियों से निर्मित होते थे उनकी फेस वैल्यू (प्रत्यक्ष मूल्य) ही मुख्यतया मान्य थी न कि राज्य सरकार के कानूनी अधिकारियों के टेन्डर (निविदा) के दबाव या प्रोत्साहित करने पर। लेकिन ताँबे या चाँदी का धन (सिक्के के रुप में) का मुद्रण सरकार के कानूनी तौर तरीके से होता था और उसकी शुद्धता भी प्रमाणित थी। जैसा कि अर्थशास्त्र द्वारा दृष्टिगत होता है कि राज्य सरकार ने सोने की निविदा के लिए कोई कानूनी बाध्यता नहीं रखी थी। यदि उचित ढंग, वजन और प्रमाणित सिक्कों का चलन पिछले समय के राजाओं या उनके राजवंशों के समय से हो रहा हो तो किसी कानूनी निविदा को सिक्कों के ढालने की अनुमति बिल्कुल नहीं थी। जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक समझा जाता था कि सिक्के खजानों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं या नहीं। विनिमय के स्वरुप को ध्यान में रखते हुए वैसे सिक्के जो कानूनी निविदा द्वारा निर्गत थे, उनका मूल्यांकन करना भी आवश्यक समझा जाता था। न्यूनाधिक रुप से लीगल टेन्डर या विनिमय के माध्यम से सिक्कों का चलन प्रमाणित रुप से मध्यकाल तक चलता रहा[16]। ठक्कुरफेरु की "द्रव्यपरीक्षा" के अनुसार

जो अलाउद्दीन खिलजी तथा कुतुबुद्दीन खिलजी के टकसाल अध्यक्ष थे, अलाउद्दीन का कोष ढेर सारे हिन्दू, गैर हिन्दू, समकालीन तथा गैर समकालीन शासकों की मुद्राओं से भरा पड़ा था। विभिन्न सिक्कों का विनिमय मूल्य उन सिक्कों की धातु की गुणवत्ता तथा भार के अनुसार प्रति जीतल मानक के आधार पर निर्धारित किया जाता था। डी० सी० सरकार[17] का कहना है कि टकसाल तथा मुद्रा की यह परम्परा शिवाजी के समय तक चलती रही, उन्होंने यह बताया कि मुम्बई के अंग्रेज व्यापारियों ने अंग्रेजी कम्पनी के रुपयों को अपने राज्य में चलवाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने उत्तर दिया कि राज्य में किसी भी संख्या में किसी भी मुद्रा के प्रवेश पर कोई रोक नहीं है, किन्तु राज्य अपने व्यापारियों को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकता कि कम मूल्य वाली मुद्रा विनिमय के उच्च दरों पर वे ग्रहण करें। इससे प्रकट होता है कि किसी भी धातु के चलन में उसकी फेस वैल्यू का निर्धारण होना आवश्यक था।

इतना तो प्रत्यक्ष था कि इस प्रथा से टकसाल तथा मुद्रासम्बन्धी विनिमय में कौड़ियों का सामान्य वस्तुओं के क्रय–विक्रय में गुप्तकाल से दिखाई पड़ता हैं फाह्यान ने इन कौड़ियों का प्रयोग व्यापार विनिमय में देखा था[18]। बंगाल के मध्यकालीन शिलालेखों जो कि पालों एवं सेनों के समय के हैं, वह इस ओर संकेत करते हैं कि सम्भवतः केवल कौड़ियाँ ही उनके समय की मुद्रा थीं[19]। इन कौड़ियों का चलन मध्यकाल में महाराष्ट्र तथा कश्मीर में भी था[20]। यहाँ तक कि कुछ क्षेत्रों में ब्रिटिश सरकार ने चलन को 1885 ई० तक सहन करते हुए हस्तक्षेप नहीं किया[21]। सत्रवहीं शताब्दी में भारत आये थॉमस बोरी नायक यात्री ने विवरण प्रस्तुत किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कौड़ियों का चलन ही एक मात्र धन के रुप में माना जाता था[22]।

प्राचीन भारत में चल रही टकसाल तथा मुद्रा सम्बन्धी परम्परा का आकलन रानाडे महोदय के निम्न निरीक्षणों से किया जा सकता हैं :

"किसी सरकार को टकसाल बन्द करने का अधिकार नहीं है, विनिमय में चालू मुद्रा की न्यूनता या उसका बाहुल्य हो गया है तो यह विषय बैंक में पूंजी जमा करने वाले व्यापारियों या सौदागरों के सोचने समझने का है। यदि वे धन नहीं चाहते तो वे सिक्के जारी करने के लिए साने चाँदी के सिल्लियाँ नहीं खरीदेगें। सरकार का कर्तव्य केवल इतना ही है कि टकसाल में लायी गयी सभी सोने चाँदी की सिल्लियों का लेखा–जोखा करके उसे टकसाल में भेज कर उसका मूल्य मुद्रा के रुप में चुकता करें[23]। इस प्रकार रानाडे व ऐसे ही अन्य विद्वानों के निरीक्षणों तथा भारतीय ग्रन्थों मुख्यतया अर्थशास्त्र से प्राप्त साक्ष्यों आदि से यह विदित होता है कि टकसाल तथा मौद्रिक विनिमय की एक विशिष्ट भारतीय परम्परा रही है।

मौद्रिक वजन–मान एवं धात्विक अनुपातः–

प्राचीन काल में सोना, चाँदी तथा तांबा जैसी धातुऐं मुद्रा निर्माण में प्रयुक्त मुख्य धातुयें थीं। सामान्यतया एक कार्षापण सोने, चाँदी ताँबे का होता था। कर्ष, सिक्के के वजन की इकाई थी। लेकिन चाँदी के सिक्कों का मान्य वजन धरण कहलाता था जो 32 रत्ती का होता था[24]। वजन के स्तर पर ताँब का कार्षापण 100, 150 और यहाँ तक 225 रत्ती तक पहुंच जाता था[25]। चाँदी के पंचमार्क सिक्के देश में चातुर्दिक चलन में थे जबकि ताँबे के सिक्के उतनी ख्याति प्राप्त नहीं कर सके[26]। सोने के आहत सिक्के अधिकतर आप्राप्त हैं, फिर भी उनका उल्लेख साहित्यिक स्रोतों में यदा कदा हुआ ही है[27]। परम्परागत कार्षापण नामक चाँदी तथा ताँबे के सिक्के

छठी शताब्दी ईसा पूर्व अर्थात महात्मा बुद्ध के जन्म से भी पूर्व चलन में थे इसे इतिहास का एक तथ्य मानना पड़ेगा[28]। अर्थशास्त्र के तत्कालीन वर्णन से पता चलात है कि सोने के सिक्कों का आम चलन नहीं था, लेकिन इतना अवश्य है कि व्यक्तिगत रुप से सोने की सिल्लियाँ खरीद कर लोग सोनारों या टकसालों से बनवाते थे। जिनकी प्रमाणिकता की जिम्मेदारी टकसाल की होती थीं मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि[29] वजन मान के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हुए यह प्रश्न किया कि वजन प्रणाली अपनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? इस सन्दर्भ में वह लिखते हैं कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न वजन प्रणाली विद्यमान थी इसलिए उनके बीच एक आनुपातिक सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक था।[30] जिससे उन क्षेत्रों के व्यापारियों को आपस में क्रय–विक्रय सम्बन्धी कोई कठिनाई न हो। अतः विभिन्न क्षेत्रीय वजन मान की विभिन्नताओं की निवृत्ति के लिए सम्बन्धित आनुपातिक नियम स्थापित किया गया। मेथातिथि[31] व्यवहार में वजन परिमाण माध्यम की सबसे छोटी इकाई "सर्षप" को ही स्वीकार करते हैं। मनुस्मृति में वजन का परिमाण श्रृसरेणु से प्रारम्भ होकर सुवर्ण, निब्क एवं धरण तक विवृत है। यथा सोने का पैमाना – 8 त्रसरेणु = 1 लिक्षा, 3 लिक्षा = 1 राजसर्षप, 3 राजसर्षप = 1 गौरसर्षप, 6 गौरसर्षप = 1 यव, 3 यव = 1 कृष्णल, 5 कृष्णल = 1 माष (सोने का), 12 माष = अर्धअक्ष, अर्धअक्ष एवं चार माष या 16 माष = 1 सुवर्ण, 4 सुवर्ण = 1 निब्क = 320 कृष्णल। चाँदी का पैमाना–3 कृष्णल = 1रुप्य माष, 16 माष = 1 धरण[32]। जबकि विष्णु भी त्रसरेणु (जल पर पड़ती हुई सूर्य की किरणों में जो कण प्रतिबिम्वित होता है उसे त्रसरेणु कहते हैं) को मानते हैं[33]। उल्लेखनीय है कि स्मृतियों में माप के नामकरण

सैद्धान्तिक थे। मेधातिथि[34] ने यह स्पष्ट रुप से लिखा है कि जो वजन मान और उनके विभिन्न अंश लोक प्रचलन में हों उन्हीं को वास्तविक वजनमान स्वीकार करना चाहिए। प्राचीन कालीन सिक्कों का वजनमान एवं धात्विक अनुपात अधिक था जबकि पूर्वमध्यकाल तक आते–आते यह कम होता गया। जो स्वर्ण सिक्के प्राचीन काल में 118–124 ग्रेन तथा छठी शताब्दी में 144–146 ग्रेन के थे, उनका वजन पूर्वमध्यकाल के द्वितीयार्ध में लगभग 56 से 63 या 64 ग्रेन ही रह गया था[35] वजन में यही कमी रजत एवं ताम्र सिक्कों में भी मिलती है। अधिकतर सिक्कों का वजन मान यूनानी ड्रैक्म 56 ग्रेन से 67ण्5 ग्रेन से मिलता जुलता है।[36] लल्लनजी गोपाल के अनुसार पूर्वमध्यकालीन सिक्कों में दो मानक वजन–मान हैं प्रथम– भारतीय पुराण, जिसका वजन लगभग 32 रत्ती या 56 ग्रेन तथा द्वितीय ड्रैक्म वजन–मान, जिसका वजन–मान 67.5 ग्रेन अपनाया गया है। लेकिन समसामयिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों में सिक्कों के 1/5, 1/10, 1/20 अंशों का भी उल्लेख मिलता है यथा पंचीयक द्रम्म, विंशोपक इत्यादि।[37] इसलिए पूर्वमध्यकालीन मुद्रानिर्माण में ड्रैक्म वजन मान को अपनाने की युक्ति अधिक तर्कसंगत प्रतीत होती है।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि सोने एवं चाँदी के सिक्कों का वजन सदैव एक समान नहीं मिलता इसलिए दोनों धातुओं के बीच आनुपातिक मूल्य भी सदैव एक समान नहीं रहा होगा। इसकी पुष्टि नासिक गुहालेख[38] से होती है जिसका समय 120 ई० का है। इस गुहालेख में 70,000 कार्षापण को 2000 स्वर्ण मुद्रा के बराबर बताया गया है। इस प्रकार दोनों में मौद्रिक अनुपात 35:1 का मिलता है।[39] लेकिन वास्तव में इस काल के शकक्षत्रप नरेश नहपान, जिसका समय द्वितीय शताब्दी ई०

का प्रारम्भिक चरण था, की रजत मुद्राओं (कार्षापण) का वजन 20 रत्ती[40] या 36 ग्रेन मिलता है और कुषाण शासकों के दीनार का वजन 118 से 124 ग्रेन मिलता है।[41] अतः तत्कालीन रजत एवं स्वर्ण मुद्राओं का वास्तविक धात्विक अनुपात 35×36=1260÷120=10.5:1 था। पेरीप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी (प्रथम शताब्दी ई०) में क्षत्रप राजाओं की रजत मुद्रा का वजन अर्धद्रम्म अर्थात लगभग 33 ग्रेन बताया गया हैं इस वजन के आधार पर कनिंघम महोदय ने चाँदी एवं सोने का अनुपात 8:1 अनुमानित किया है।[42] लेकिन वास्तव में पेरीप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी के वजन मान के आधार पर गणना करने पर दोनों धातुओं के बीच 9.3:1 का अनुपात मिलता है। कुछ मुद्राशास्त्रियों[43] के अनुसार मनु द्वारा प्रदत्त रजत (पुराण) एवं सुवर्ण के अनुपात के आलोक में गणना करने पर यह धात्विक अनुपात क्रमशः 14:1 आता है जो वास्तविक स्थिति का द्योतन नहीं करता है।[44]

कुमारगुप्त प्रथम के बैग्राम ताम्रपत्र अभिलेख[45] (448 ई०) में यह मौद्रिक अनुपात 16 रुपक=1 दीनार बताया गया है। लेकिन वास्तव में इस समय रुपक और दीनार का वजन क्रमशः (शकक्षत्रप एवं कुषाणों की मुद्राओं का वजन) लगभग 20 रत्ती या 36 ग्रेन और 118–124 ग्रेन मिलता है। इस आधार पर रजत एवं स्वर्ण का वास्तविक धात्विक अनुपात लगभग 5:1 (4.8:1) निकलता है।[46] लगभग छठी शताब्दी ई० में यही धात्विक अनुपात 4:1 हो जाता है क्योंकि स्वर्ण मुद्राओं का वजन लगभग 140–144 ग्रेन मिलता है।[47] शशांक जिसका शासन काल सातवीं शताब्दी ई० पूर्वाद्ध में था, की जो कतिपय स्वर्ण मुद्रायें मिली हैं वे लगभग भारतीय स्वर्ण वजन मान पर आधारित हैं। लेकिन इस काल की रजत मुद्रा लगभग 35–36 हगेन की प्राप्त हुई हैं।

इस आधार पर शशांक के समय रजत एवं स्वर्ण मुद्राओं के बीच धात्विक अनुपात 4:1 निकलता है। हर्षवर्धन की एक मात्र स्वर्ण मुद्रा के० डी० वाजपेयी द्वारा प्रकाशित की गयी हैं। यह स्वर्ण मुद्रा उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले से मिली है, जिसका वजन 113.5 ग्रेन[48] बताया गया है। लेकिन अधिकांश इतिहासकार इस मुद्रा को जाली मानते हैं। जब तक उसकी अन्य कोई स्वर्ण मुद्रा न मिले, तब तक किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं है। एक मात्र मुद्रा के आधार पर स्वर्ण एवं रजत धातुओं के बीच अनुपात स्थापित नहीं किया जा सकता है। हर्षवर्धन की चाँदी की मुद्राओं का वजन लगभग 36 ग्रेन है। इसी प्रकार मौखरि, वल्लभी, त्रैकूटक इत्यादि राजवंशों की केवल रजत मुद्रायें ही प्राप्त हुई हैं, जिनका वजन लगभग 36 ग्रेन है।

इसी तरह ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में सोने और तांबे का अनुपात स्थापित करना कठिन है। ब्रहस्पति[49] (चौथी—पाँचवी शताब्दी ई०) व कात्यायन स्मृति (चौथी—पाँचवी शताब्दी ई०) में स्वर्ण अथवा दीनार (सोन की मुद्रा) का वजन 124 ग्रेन तथा कर्ष (ताम्रमुद्रा) का वजन 144.4 उल्लिखित है और 48 कार्षापण (ताम्रमुद्रा) के मूल्य के बराबर एक स्वर्ण अथवा दीनार बताया गया है। इस आधार पर धातु रुप में ताम्र एवं स्वर्ण का अनुपात 56:1 (144×48=6922÷124=56:1) अनुमानित होता है।[50] लेकिन यह अनुपात सैद्धान्तिक है क्योंकि वास्तव में चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्ध ताम्रमुद्राओं का वजन 84.3 ग्रेन तथा 87 ग्रेन मिलता है।[51] कुमारगुप्त एवं स्कन्दगुप्त[52] के सिक्के भी लगभग इसी वनज—मान के हैं। इसलिए औसत वजन—मान 84 ग्रेन मानना उपयुक्त होगा। स्कन्दगुप्त की ताम्रमुद्रायें 87 ग्रेन, 57 ग्रेन, 49 ग्रेन, 44 ग्रेन, 35 ग्रेन, 25 ग्रेन की मिलती हैं किन्तु उनका मानक वजन 84 ग्रेन, 56 ग्रेन, 48 ग्रेन,

42 ग्रेन, 36 ग्रेन, 24 ग्रेन ठहरता हैं इस आधार पर गुप्त काल में ताम्र एंव स्वर्ण का धात्विक अनुपात लगभग 179:1 (84×256=21504÷120=119:1) निकलता है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. क्वाइन्स आफ एन्शियन्ट इन्डिया, पृष्ठ–43।
2. प्री० मोहम्मडन क्वाइनेज ऑफ नार्थ वेस्टर्न इन्डिया, पृष्ठ–42।
3. एपीग्राफिका कारनाटिका, पृष्ठ–57।
4. बी० एम० सी० ए० आई०, पृष्ठ–ग्प्ग।
5. कैटलॉग ऑफ क्वाइन्स इन दि इन्डियन म्यूजियम ए, पृष्ठ–135 ;प्डब्द्ध
6. ऋग्वेद, 10–108–7,
   "अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नः गोभिः अश्वेभिः निः ऋष्टः।
   रक्षन्ति ते पणयः ते सुगोपाः रेकुं पदं अलकंआ जगन्थ।।"
7. ऋग्वेद, 2–24–6, "निधिं पणीनां परमं गुहा हितम्"।
8. ऋग्वेद, 5–334–7।
9. मनुस्मृति, टप्प्प् 131।
10. अष्टाध्यायी, 5.2, 120, ("रुपादाहतं रुपयं कार्षापणम")।
11. हर्षचरित– चतुर्थ उच्छवास।
12. ओम प्रकाश– कन्सेप्च्युलाइजेशन एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ–126।
13. अर्थशास्त्र अनुवादित, शामा शास्त्री, पृष्ठ–95–96।
14. अर्थशास्त्र अनुवादित, शामाशास्त्री, पृष्ठ–94–95।
15. ओम प्रकाश– कन्सेप्च्युलाइजेशन एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ–127।
16. उपरिवत्, पृष्ठ–127।
17. जे० एन० एस० आई०, टप्प्प् 1945, पृष्ठ–78।

18. राय चौधरी– पी० एस० ए० आई० (चतुर्थ संस्करण), पृष्ठ– 469–70।

19. आर० सी० मजूमदार– एच० बी०, 1971, पृष्ठ–667–9।

20. जे० एन० एस० आई०, 1945, पृष्ठ–85।

21. ओम प्रकाश– कन्सेप्च्युलाइजेशन एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ–85।

22. टेम्पल, आर० सी०, जी० ए० सी० बी०, 1905, पृष्ठ–200।

23. जे० एन० एस० आई०, टप्पए पृष्ठ–78।

24. सरकार, एस० आई० आई० सी०, पृष्ठ–2 एफ।

25. जे० एन० एस० आई०, ग्गटए पृष्ठ–269।

26. जे० एन० एस० आई०, ग्गटए पृष्ठ–5।

27. उपरिवत्, पृष्ठ–2।

28. ओम प्रकाश– कन्सेटच्युलाइजेशन एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ–129।

29. मनुस्मृति (मेधातिथि), टप्पए पृष्ठ–131।

30. उपरिवत् पृष्ठ–131,– "अन्येषामपि परिमेयानाम यस्यकांस्य सुवर्ण दीनामेत संज्ञाः सन्ति, तन्निवृत्यर्थः। कचिदेशंपरिमाणे भेदोच्च्यस्ति, तन्निवृत्यर्थश्च। कचित सबन्धतया नियम्यते तथा च कचिदब्टा चत्वरिशंता माष बन्धं कचिंच्चुतः षब्ट या कचित साब्टेन शतेन। तदेतत्सवै नियन्मेत।"

31. टप्पए पृष्ठ–134।

32. टप्पए पृष्ठ–132–135।

33. विष्णु स्मृति, 4.1–13।

34. टप्प्प्ए पृष्ठ–131।

35. ज० न्यू० सो० इ०, ए पृष्ठ–2।

36. लल्लनजी गोपाल– इकोनोमिक लाइफ ऑफ नार्दन इन्डिया, पृष्ठ–179।

37. इपि० इण्डि०, जिल्द–प्प्ए पृष्ठ–159,175,178।

38. सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स जिल्द– ए पृष्ठ–157 और आगे।

39. 70000÷2000=35:1।

40. डी० सी० सरकार– स्टडीज इन इन्डियन क्वाइन्स वाराणसी, 1968, पृष्ठ–374 (फलक ए 2)

41. उपरिवत्, पृष्ठ–371।

42. ए० एन० बोस– सोशल एण्ड रुरल इकोनोमी ऑफ नार्दन इन्डिया, पृष्ठ–133।

43. उपरिवत, पृष्ठ–133।

44. कतिपय विद्वानों ने पुराण (धरण) के वजन–मान 32 रत्ती या 56 ग्रेन को नासिक गुहालेख के कार्षापण जिसका वास्तविक वजन लगभग 36 ग्रेन था, का वजन मानकर तथा स्वर्ण मुद्रा को 140 ग्रेन मान कर यह गणना की है जो त्रृटि पूर्ण एवं भ्रामक है।

45. सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, जिल्द 2, पृष्ठ–343।

46. एक रुपक का वजन लगभग 36 ग्रेन था। इसलिए 16 रुपक=36×16=576 गेन। कुषाण काल से लेकर प्रारम्भिक गुप्त राजाओं के स्वर्ण सिक्के औसतन 120 ग्रेन के मिलते हैं।

47. इसलिए 576÷120=4.8:1।

48. स्कन्दगुप्त के शासन काल तथा परवर्ती काल (शशांक के समय तक) में स्वर्ण सिक्कों का वजन लगभग 80 रत्ती या 140 ग्रेन मिलता है, लेकिन रजत मुद्राओं का वजन 36 ग्रेन ही मिलता है, इसलिए रजत एवं स्वर्ण मुद्राओं का वास्तविक धात्विक अनुपात 4:1 मिलता है।

49. स्कन्दगुप्त से लेकर शशांक तक की जो मुद्रायें हैं वे लगभग 144–146 ग्रेन की हैं चूँकि हर्ष का शासन काल स्कन्दगुप्त का परवर्ती काल तथा शंशाक का सम–सामायिक था इसलिए इसकी भी मुद्रा उसी वजन–मान के आस–पास होनी चाहिए था। किन्तु ऐसा नहीं हैं, इस विवादित सिक्के में ड्रेक्म अथवा दीनेरियम अथवा स्वर्ण किसी भी वजन–मान का अनुकरण किया गया नहीं प्रतीत होता है।

50. टष्एए 9–10।

51. ए० एन० बोस ने 57:1 बताया है, दृष्टव्य सोशल एण्ड इकोनोमी ऑफ नार्दन इण्डिया, पृष्ठ–134।

52. यू० एन० राय– गुप्त सम्राट एवं उनका युग, पृष्ठ–25।

53. सत्यं प्रकाश एवं राजेन्द्र सिंह, "क्वाइनेज इन एशियन्ट इन्डिया, पृष्ठ–184, नई दिल्ली, 1968।